

प्रवचन-१७५, श्लोक-२५९, गाथा-१५१, मंगलवार, ज्येष्ठ कृष्ण ११, दिनांक ०८-०७-१९८०

नियमसार १५० गाथा, टीका पूरी हो गयी। टीका पूरी होने के पश्चात् श्लोक है, श्लोक। इसी प्रकार ( आचार्यदेव ) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने ( श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ९०वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि:—

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजाला-  
मेवं व्यतीत्य महतीं नय-पक्ष-कक्षाम् ।  
अन्तर्बहिः सम-रसैक-रस-स्वभावं,  
स्वं भाव-मेक-मुपयात्यनुभूति-मात्रम् ॥

**श्लोकार्थः** इस प्रकार जिसमें बहु विकल्पों के जाल अपने आप उठते हैं... यहाँ विशिष्टता यह है। आहाहा! है समयसार का कलश। जो विकल्प की गाथाएँ आयी हैं न? पश्चात् यह गाथा रखी है। आत्मा तो सच्चिदानन्द परमपवित्र परमात्मस्वरूप ही है, उसमें तो अल्पता का और विकल्पता का भी अवकाश नहीं है। अल्पता और विकल्पता दोनों का उसमें अवकाश नहीं है। पूर्ण और निर्विकल्प वस्तु है। आहाहा! परन्तु उसमें बहुत विकल्पों का जाल अपने आप उठता है। इसलिए पर्याय में से विकल्प उठता है। आहाहा! वस्तु तो वस्तु है। चाहे जितने विकल्प हों, परन्तु वस्तु तो परमात्मस्वरूप है। उसमें कमी, विकृति कुछ नहीं आती। आहाहा! ऐसी वह चीज़ है, अखण्ड आनन्द चैतन्यमूर्ति, कि जिसमें विकल्प का अवकाश तो नहीं परन्तु अल्पता का भी अवकाश नहीं। पूर्ण स्वरूप है। आहाहा! उसमें कहते हैं, **बहु विकल्पों के जाल अपने आप उठते हैं...** अपने आप उठता है अर्थात्? स्वभाव में नहीं-वस्तु में नहीं और पर्याय में अध्धर से उत्पन्न होता है, ऐसा कहना चाहते हैं। आहाहा! स्वरूप है, उसमें यह बात है नहीं। पर्याय में छोर में विकल्प का जाल, दया, दान, व्रत, काम, क्रोध, यह व्यापार-धन्धा आदि के विकल्प—पाप उठते हैं। कहते हैं। आहाहा!

प्रभु स्वयं चैतन्यमूर्ति भगवान परमात्मस्वरूप ही है, परमेश्वर ही है, परन्तु परमेश्वर के अन्दर की पर्याय में यह विकल्प अर्थात् बन्धन के कारण दुःखरूप दशा अपने आप उठती है। आनन्दस्वरूप में विकल्प उठे कैसा? प्रभु! जहाँ आनन्द है, वहाँ दुःख कैसा?

ऐसा कहना चाहते हैं। समझ में आया? जहाँ निर्विकल्प चैतन्य प्रभु है, वहाँ विकल्प कैसा? राग कैसा? आहाहा! जहाँ अखण्ड वीतरागमूर्ति प्रभु है, वहाँ राग के अंश का अवकाश कहाँ से? इसलिए ऐसा कहते हैं कि **इस प्रकार जिसमें बहु विकल्पों के जाल अपने आप उठते हैं...** वस्तु में नहीं है, वस्तु के गुण में नहीं है। आहाहा!

पर्याय में अपने आप (उठता है), ऐसा कहने का आशय ऐसा है कि कर्म से नहीं, तथा द्रव्य और गुणस्वभाव से नहीं। पर्याय में उठता है। पहले आ गया न? संसारजनित प्रबल। आहाहा! वस्तु तो परमात्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति ही है, ऐसा होने पर भी वस्तु में विकल्प उत्पन्न नहीं होते परन्तु पर्याय में अपने आप कर्म की अपेक्षा बिना और स्वभाव की अपेक्षा बिना अपने आप अन्दर विकल्प उठते हैं। आहाहा! समझ में आया? प्रभु तो आनन्दमूर्ति है तथा कर्म से विकल्प उठे, यह है नहीं। पर से विकल्प उठे, यह है नहीं। तथा स्वभाव आनन्द और वीतरागमूर्ति प्रभु है, उससे विकल्प उठे ऐसा है नहीं। इसलिए यह शब्द प्रयोग किया है कि **बहु विकल्पों के जाल अपने आप उठते हैं...** आहाहा! दोनों पक्षों से देखने पर कर्म से भी नहीं और द्रव्य से भी नहीं। पर्याय में अनादि-अज्ञान के कारण विकल्प का, दुःख का जाल उत्पन्न होता है। वह दुःख है, वह दुःख है, आकुलता है। आहाहा! अज्ञानी को यह आकुलता नहीं लगती। क्योंकि आनन्द को देखा नहीं; इसलिए आकुलता है, ऐसी खबर नहीं पड़ती। आहाहा! इसलिए कहते हैं, विकल्प का जाल अपने आप उठता है।

**ऐसी विशाल नयपक्ष कक्षा को ( नयपक्ष की भूमि को ) लाँघकर...** आहाहा! ऐसा नयपक्ष है, उसे भी छोड़ दे। मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ और एक हूँ, ऐसे विकल्प को भी लाँघकर। आहाहा! ऐसा मार्ग! **विशाल नयपक्ष कक्षा...** अर्थात् अन्दर बहुत सूक्ष्म विकल्प उठे, उसे भी लाँघकर। धर्मी जीव को स्वतत्त्व के अवलम्बन के कारण उसके विकल्प का जाल उत्पन्न नहीं होता। स्वतत्त्व के अवलम्बन में, स्वतत्त्व में विकल्प नहीं, इसलिए उसे विकल्प नहीं उठते। लाँघकर ( अर्थात् ) उस विकल्प को लाँघकर। अन्तरात्मा आनन्दमूर्ति प्रभु की दृष्टि लेकर विकल्प को लाँघ जाता है। दुःख के जाल को छोड़ देता है। आहाहा! ऐसी बात! निवृत्ति की फुरसत नहीं मिलती।

यहाँ तो दूसरी बात छोड़ दी। अन्तर में गुण है, उसके पक्ष की भी नयपक्ष कक्षा

उत्पन्न होती है। बाहर की बात छोड़ दे। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान, हिलना-चलना, वह सब बात छोड़ दे। वह तो सब जड़ का है। यह विकल्प की जाल अपने आप अन्दर से, पर्याय में विकृति (उत्पन्न होती है)... आहाहा! उसे तत्त्व का जाननेवाला, चैतन्य का वेदन करनेवाला उस विकल्प को लाँघ जाता है। आनन्द का वेदन करनेवाला दुःख को लाँघ जाता है। विकल्प, वह दुःख है। आहाहा! है ?

( नयपक्ष की भूमि को ) लाँघकर... यह नयपक्ष की भूमिका ही उसे नहीं रहती, ऐसा कहते हैं। उसकी सत्ता में है नहीं, इसलिए उसकी भूमिका में वह है नहीं। उस भूमिका को, नयपक्ष की भूमिका को लाँघकर... आहाहा! चैतन्य की भूमि और आनन्द के स्पर्श में, चैतन्य भगवान अन्दर परमात्मा विराजता है। आहाहा! उसे अब छोटी-बड़ी साधारण बात हो, उसमें रस लग जाए, उसे यह नयपक्ष लाँघना तो बहुत कठिन काम। नयपक्ष को लाँघने की बात है। जगत के (कार्य) करना और यह किया, यह बात यहाँ नहीं है। आहाहा! हिलना, चलना, बोलना, खाना, पीना, लिखना, यह बात नहीं है। इस बात से विकल्प उठे, वह बात यहाँ नहीं है। यह ऊपर आ गया है न? ऊपर आ गया है। खाना, सोना, गमन करना, स्थिर रहना। आहाहा! यह नहीं। मात्र अपने को भूलकर विकल्प की, राग की वृत्तियों का उत्पन्न होना, वह अपनी भूमिका को जानने पर आनन्द की भूमिका ऐसी भगवान की भूमि है, उसे जानने पर राग को लाँघ जाता है। आहाहा!

( तत्त्ववेदी )... जो तत्त्व का जाननेवाला, तत्त्व को वेदन करनेवाला, आत्मतत्त्व को अनुभव करनेवाला। भीतर और बाहर समता-रसरूपी एक रस ही जिसका स्वभाव है... अन्तर में भी समतारस है, पर्याय में भी समतारस है। आहाहा! भीतर और बाहर समता-रसरूपी एक रस... वह अनेक नयपक्ष था, बहुत विकल्प का जाल था, उसके सामने एक लिया समता-रसरूपी एक रस ही जिसका स्वभाव है... आहाहा! भगवान आत्मा का विकल्प के भावरहित अकेला निजरस का स्वभाव, एकरूप जिसका स्वभाव है। ऐसे अनुभूतिमात्र... ओहो! निश्चय सत्य तो यह है, परम सत्य यह है; बाकी सब बातें हैं। यह रुचना मुश्किल पड़ता है और वह रुचना सरल पड़ता है। कभी अभ्यास नहीं। आहाहा! चैतन्यसत्ता महाप्रभु की, जिसकी एक ही पर्याय एक समय में, वह बाहर के कारण से नहीं ली। मात्र अन्दर के कारण से मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, ऐसे नय के विकल्प जाल

उठे... आहाहा! उसे भी लाँघकर। आहाहा! अब बाहर के विकल्प की बात नहीं है। अन्तर का विकल्प जाल जो है, उसे लाँघकर। आहाहा!

**भीतर और बाहर समता-रसरूपी...** इसका अर्थ यह कि विकल्प है, वह असमता है, राग है, आकुलता है। उसे छोड़कर समतारसरूपी **एक रस ही जिसका स्वभाव है...** भगवान आत्मा का समता वीतरागता अकेला शान्ति अकषायस्वभाव, ऐसा एक ही जिसका स्वभाव है। उसका एक ही रस जिसका स्वभाव है। आहाहा! **ऐसे अनुभूतिमात्र एक अपने भाव को ( स्वरूप को ) प्राप्त होता है।** वह जीव अपने आत्मभाव को प्राप्त करता है। ऐसी बातें हैं। बाहर का करना, हिलना, चलना, अमुक लिखना, बोलना, वह तो कहीं रह गया। उसकी बात तो यहाँ की नहीं। अन्तर में नयपक्ष का जो पक्ष उठता है; बाहर का नहीं, अन्दर में पक्ष जो विकल्प उठता है... आहाहा! उसे भी लाँघकर तत्त्ववेदी आनन्द के वेदन में उसे लाँघ जाता है। आहाहा! क्योंकि उसका आनन्द एकरस है। आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द एकरस है। आहाहा! संक्षिप्त भाषा में बहुत रखा है।

**मुमुक्षु :** प्रमाण, नय और निक्षेप तीनों के विकल्प छूट जाते हैं ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सब छूट जाता है। नय-निक्षेप, १३वीं गाथा में नहीं आया ? १३वीं। नय-निक्षेप-प्रमाण से निर्णय करे, विकल्प आवे परन्तु उसे छोड़े तब अन्दर में जाता है। आहाहा!

बाहर की बात तो अलग ही रही, यह तो अन्तर के आत्मा के ओर की, आत्मा के झुकाववाले विकल्प जो आते हैं... आहाहा! उन्हें भी छोड़कर तत्त्व का अनुभव करे, तब एक रस, समतारस का वेदन होता है। तब उसे अनुभूति कहने में आया। आहाहा! उसमें बहुत विकल्प ( शब्द ) प्रयोग किया था न ? बहुविकल्प के जाल, प्रयोग किया था। अपने आप उठते हैं। यहाँ बाहर और समता और अन्दर ( समता ) और बाहर समतारूपी... वस्तु तो अन्दर समतारस का पिण्ड ही है, परन्तु पर्याय में भी समतारस प्रगट हुआ है। शान्त... शान्त... शान्त... शान्ति... शान्ति...

उसके रस को बाहर और अन्दर एक ही जिसका रस है। एक रस ही जिसका स्वभाव है। एकान्त नहीं ? यह तो एकान्त किया। **समता-रसरूपी एक रस ही जिसका स्वभाव है...** कथंचित् राग और कथंचित् विकार का, यह बात ही नहीं है। आहाहा! इसका

नाम एकान्त है। एक रस ही जिसका स्वभाव है... कथंचित् व्यवहार से होता है और कथंचित् निश्चय से होता है, ऐसा भेद नहीं। कथन में आवे परन्तु वस्तुस्वरूप के अनुभव में नहीं है। कथन के समय कथन व्यवहार आवे, जाने, परन्तु अपने रस में जहाँ जाने पर उसकी अनुभूतिमात्र एक अपने भाव को (स्वरूप को) प्राप्त होता है। इसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, अनुभूति, आनन्द का स्वाद, मोक्ष के मार्ग की पहली सीढ़ी, इसका नाम कहा जाता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** गुण तो अनन्त है और रस एक ही क्यों ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** एक ही रस समता। अनन्त गुण का रस। भेद कहाँ है वहाँ ? भेद कहाँ है कि यह ज्ञान का रस और यह आनन्द का रस। विकल्प का भेद ही जहाँ नहीं है। एक ही आनन्द का रस सब गुण का। सब गुण के आनन्द का रस एकरस ही है। आहाहा ! गुण अनन्त हैं, तथापि एक आनन्द का रस सब गुण के रस में एक आनन्द का। ज्ञान का आनन्द, दर्शन का आनन्द, आनन्द का आनन्द, अस्तित्व का आनन्द, वस्तुत्व का आनन्द, ऐसा एकरस ही जिसका समता स्वभाव है। आहाहा ! ऐसी बात कहाँ... ?

ऐसे अपने भाव को प्राप्त करता है। एकरस ही जिसका स्वभाव है, ऐसा कहा या नहीं ? अनन्त गुण है, ऐसा नहीं कहा। अनन्त गुण का आनन्द का रस एक उसका स्वभाव है। जैसे आकुलता का स्वभाव दुःख है, अनेक विकल्प का स्वभाव दुःख है, तो यहाँ आत्मा का स्वभाव अकेला आनन्द है। ऐसा लिया। आहाहा ! वह अनन्त गुण का आनन्द भी एकरूप रस है, वहाँ भेद नहीं है। आहाहा !

श्लोक-२५९

और ( इस १५०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं ):—

( मंदाक्रांता )

मुक्त्वा जल्पं भवभयकरं बाह्यमाभ्यन्तरं च,  
स्मृत्वा नित्यं समरसमयं चिच्चमत्कारमेकम् ।  
ज्ञानज्योतिः प्रकटितनिजाभ्यन्तरङ्गान्तरात्मा,  
क्षीणे मोहे किमपि परमं तत्त्व-मन्तर्ददर्श ॥२५९॥

( वीरछन्द )

भवभयकारी बाह्याभ्यन्तर जल्पभाव को छोड़ सदा ।  
समरसमय चित्-चमत्कार का करके जो स्मरण सदा ॥  
ज्ञान-ज्योति द्वारा जिसने निज अभ्यन्तर अंग प्रगट किया ।  
अन्तरात्मा क्षीणमोह ने परम तत्त्व अन्तर देखा ॥२५९॥

[ श्लोकार्थः ] भवभय के करनेवाले, बाह्य तथा अभ्यन्तर जल्प को छोड़कर, समरसमय ( समतारसमय ) एक चैतन्यचमत्कार का सदा स्मरण करके, ज्ञानज्योति द्वारा जिसने निज अत्यन्तर अंग प्रगट किया है, ऐसा अन्तरात्मा, मोह क्षीण होने पर, किसी ( अद्भुत ) परमतत्त्व को अन्तर में देखता है ॥२५९॥

श्लोक - २५९ पर प्रवचन

और ( इस १५०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं ):— वह तो समयसार का था अमृतचन्द्राचार्य का था ।

मुक्त्वा जल्पं भवभयकरं बाह्यमाभ्यन्तरं च,  
स्मृत्वा नित्यं समरसमयं चिच्चमत्कारमेकम् ।

ज्ञानज्योतिः प्रकटितनिजाभ्यन्तरङ्गान्तरात्मा,  
क्षीणे मोहे किमपि परमं तत्त्व-मन्तर्ददर्श ॥२५१॥

**श्लोकार्थः** भवभय के करनेवाले, बाह्य तथा अभ्यन्तर जल्प को... आहाहा! बाह्य के विकल्प तो भवभय के करनेवाले हैं। कहते हैं कि उनसे भव का भय उत्पन्न होता है। आहाहा! उस विकल्प का फल भव है। कहाँ जाएगा? कहाँ उत्पन्न होगा? **भवभय के करनेवाले, बाह्य तथा अभ्यन्तर जल्प को...** यह नयपक्ष के जो विकल्प हैं, वे भी भवभय के करनेवाले हैं। आहाहा! है? बाह्य तथा अभ्यन्तर जल्प। जल्प अर्थात् विकल्प। **भवभय के करनेवाले,...** आहाहा! शुभभाव तो कहीं अन्दर रह गया। विकल्प जो है, वह शुभ है। आहाहा! वह भी भवभय का करनेवाला है। आहाहा! आत्मा सम्बन्धी विकल्प पर्याय में उठे, वह भी कहते हैं कि दुःखरूप है। आहाहा!

**भवभय के करनेवाले,...** आहाहा! भव हो। कहाँ उपजेगा? कहाँ अवतरेगा? कितना काल वहाँ रहेगा? कैसे संयोगों में रहेगा? आहाहा! नाला-नाला होता है न? उसमें जानवर गिर जाता है। गिलहरी या चूहा, उसका कहीं पार नहीं होता। पानी चला जाता हो, उसमें मर जाते हैं। आहाहा! उलझकर मर जाते हैं, वह तो साधारण भाव का फल है परन्तु यहाँ तो नयपक्ष का फल भी भव करनेवाला है। आहाहा! यह पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं, टीकाकार स्वयं कहते हैं।

**भवभय के करनेवाले, बाह्य तथा अभ्यन्तर जल्प को छोड़कर, समरसमय ( समतारसमय ) एक चैतन्यचमत्कार का...** आहाहा! वीतरागस्वरूप विराजमान समता.. समता.. समता.. अकेला वीतरागरस ही है। जिसमें अकेला वीतरागभाव ही भरा है। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे **एक चैतन्यचमत्कार का...** एक ही चैतन्य चमत्कार का, **सदा स्मरण करके,...** उसका स्मरण कर, कहते हैं। भगवान का स्मरण भी भूल जा। आहाहा! आयी न भाषा? **एक चैतन्यचमत्कार का सदा स्मरण करके,...** दूसरा नहीं। आहाहा! एक चैतन्यचमत्कार। अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति से भरपूर चमत्कारिक चीज़ है। आहाहा! उसे तू सदा स्मरण कर, उसका स्मरण कर। आहाहा! दूसरे को याद करता है और स्मरण करता है, वह भूल जा। भगवान को याद कर न! तू स्वयं परमात्मा है न। आहाहा!

उसे सदा स्मरण करके, ज्ञानज्योति द्वारा... आहाहा! अन्तर के चैतन्य के प्रकाश द्वारा जिसने निज अभ्यन्तर अंग प्रगट किया है... आहाहा! जिसने निज अभ्यन्तर अंग अर्थात् शान्ति और आनन्द, वह अभ्यन्तर अंग है। आहाहा! शान्ति, आनन्द, वीतरागता, अनन्त गुण का एकरूप वीतरागस्वरूप, ऐसा निज अभ्यन्तर अंग प्रगट किया। अभ्यन्तर अंग को जिसने प्रगट किया। यहाँ अभ्यन्तर अंग कहा, देखा! यह शरीर-बरीर नहीं। शरीर अंग नहीं है, वाणी अंग नहीं है, कर्म अंग नहीं है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म पड़े, इसलिए फिर लोग व्यवहार में जोड़कर निकालते हैं। व्यवहार से होता है, व्यवहार करते-करते होता है।

**मुमुक्षु :** ऐसा लोगों ने पढ़ा या सुना किस दिन ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वांचन तो करते हों परन्तु अन्दर से निश्चय न हो, ऐसा का ऐसा एक ओर निकाल दे। व्यवहार में हो वह। यहाँ तब नहीं बोलते थे? पण्डित इकट्ठे हुए थे। कैलाशचन्दजी कहते थे - निश्चय की बात आवे, तब हम छोड़ देते हैं। व्यवहार की बात आवे, तब विस्तार करते हैं। यहाँ कहा था (संवत्) २००३ के वर्ष में। आहाहा!

यह बात सुनने पर अभी इसे कठिन पड़े कि यह क्या है? यह चैतन्य का रस है। आनन्द का रस है। आहाहा! एक आम के रस के स्वाद में चिपटा, यह तो आनन्द का रस है, वह तो धूल का रस है। आम तो धूल है। आहाहा! पुद्गल है, धूल है। उसका रस लगता है। इसका रस नहीं लगा। उस पर लक्ष्य करके राग करता है, उसका रस है। आम रस यह चखता भी नहीं। आहाहा! मात्र उसकी मिठास यहाँ दिखती है, वह राग, उस राग को वेदन करता है, आम के रस को कोई वेदन नहीं करता, कोई खाता भी नहीं। जड़ को कौन खाये? चैतन्य जड़ (को) खाये? आहाहा! चैतन्य अपने स्वभाव को भूलकर यह ठीक है, ऐसा जो राग होता है, उसका वेदन करता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि नयपक्ष को भी लाँघकर एक चैतन्यचमत्कार को सदा स्मरण कर, सदा स्मरण कर। आहाहा! जिसे एक ही लगन लगी है। किसी समय याद करना और किसी समय भूल जाना, ऐसा नहीं है। आहाहा! भिन्न पड़ा, वह तो निरन्तर रहने का है। राग से भिन्न पड़ा, वह तो सदा निरन्तर रहेगा, ऐसा कहते हैं। सदा स्मरण कर, इसका अर्थ यह है। सदा निरन्तर रहनेवाला। राग से भिन्न पड़ा, ऐसा भगवान आहाहा! यह तो अभी धर्म की पहली सीढ़ी की बात है। चारित्र की बात तो कोई अलौकिक, बापू! आहाहा!



वस्त्र छोड़कर नग्न हो जाए, तो साधु हो जाए, ऐसा कुछ नहीं है, बापू! आहाहा!

एक चैतन्यचमत्कार का सदा स्मरण... आहाहा! ज्ञानज्योति द्वारा... ज्ञान के प्रकाश द्वारा जिसने निज अभ्यन्तर अंग प्रगट किया है... आहाहा! देखा? जिसने निज अभ्यन्तर अंग प्रगट किया है... आनन्द का रंग पर्याय में चढ़ गया है। आहाहा! शान्ति का रस पर्याय में चढ़ गया है। यह अभ्यन्तर उसका अंग है। आहाहा! शरीर, वाणी तो नहीं, विकल्प का जाल, वह नहीं; शान्ति और आनन्द जिसका एकरस, वह अभ्यन्तर अंग प्रगट किया है। आत्मा का अन्तर आनन्द का अभ्यन्तर अंग प्रगट किया है। आहाहा!

ऐसा अन्तरात्मा,... ऐसा तो यहाँ अभी अन्तरात्मा की बात चलती है, परमात्मा की नहीं। साधक जीव की बात चलती है। आहाहा! ऐसा अन्तरात्मा, मोह क्षीण होने पर,... चैतन्यचमत्कार में चढ़ा, उसे मोह क्षीण होने पर किसी ( अद्भुत ) परमतत्त्व को अन्तर में देखता है। आहाहा! पूर्ण केवलज्ञान देखता है। अनन्त-अनन्त गुण का समुद्र, सुख का सागर... आहाहा! उसे अन्तर में देखता है। आहाहा! है? परमतत्त्व को अन्तर में देखता है। आहाहा! विकल्प में नहीं, बाह्य में नहीं। पूजा, भक्ति और बाहर में धमाल, मन्दिर और यात्रा और भक्ति तथा गजरथ और शोभायात्रा, उसमें आत्मा का अंग नहीं है। आहाहा! आत्मा का अंग तो अन्तर का है। ऐसा अन्तर आत्मा मोह क्षीण होने पर, मोह का नाश करके। यह तो मोह क्षीण होने पर; मोह का नाश करके—ऐसा नहीं कहा। अन्तर के रस में चढ़ा और उसका मोह क्षीण होने पर, ऐसा कहा है। आहाहा! मोह को क्षीण करता है, ऐसा भी शब्द प्रयोग नहीं किया।

मोह क्षीण होने पर,... आहाहा! यहाँ जहाँ जमी, वहाँ मोह क्षीण हुआ। अन्तर में जहाँ जमावट जमी, आनन्द और वीतरागभाव की जमावट हुई... आहाहा! वहाँ मोह क्षीण हो जाता है। मोह क्षीण करता है, ऐसा भी शब्द नहीं लिया। मोह क्षीण होने पर... आहाहा! अन्तर के आनन्द के रस में चढ़ा हुआ भगवान, उसे मोह क्षीण होने पर कोई अद्भुत परमतत्त्व को... त्रिकाली परमात्मा अन्तर में देखता है। आहाहा! परमपारिणामिकभाव, ज्ञायकभाव को पूर्ण रीति से देखता है। आहाहा! ऐसी बड़ी बातें हैं।

पंचम काल में भले मोह क्षीण नहीं है परन्तु यह वस्तु की स्थिति का अनुभव तो कर सकता है न? आहाहा! पंचम काल के मुनि पंचम काल के जीव को कहते हैं। ऐसा

नहीं कि तुम जीव हो, पंचम काल में तुम्हें उत्पन्न नहीं होगा, प्रभु! तू तो सदा त्रिकाली परमात्मा है न! तुझे काल लागू नहीं पड़ता न! आहाहा! तीनों काल निरावरण है न, तीनों काल स्वयं सत् रूप, सत् का सत्य विराजता है न! उसे अन्दर में देखता है। ऐसे परम तत्त्व को (देखता है)। पर्याय में राग और निर्मल पर्याय का भी लक्ष्य नहीं लिया। यहाँ तो अन्दर में परम तत्त्व को देखता है। पर्याय को देखता है, ऐसा भी नहीं है। निर्मल पर्याय भी नहीं। निर्मल पर्याय, परम तत्त्व को अन्दर में देखती है। आहाहा! गजब बात है। बात ऐसी है।

**परमतत्त्व को अन्तर में देखता है।** देखता है, वह पर्याय है, परन्तु (जिसे) देखता है, वह द्रव्य है। देखती है, वह पर्याय है परन्तु अन्दर में जो देखती है, वह द्रव्य है। पर्याय, द्रव्य को देखती है। पर्याय, द्रव्य को देखती है। आहाहा! है न? जो पर्याय राग में लवलीन थी और राग में विकल्प जाल में हैरान-हैरान होती थी। आहाहा! वह विकल्प जाल छोड़कर, वह पर्याय निर्विकल्प होकर अन्तरतत्त्व को देखती है। भगवान् पूर्ण गुण का पिण्ड अन्दर है। चैतन्य परमात्मा है, ऐसा जो परिणति परमात्मा को देखती है। निर्मल परिणति परमात्मा को देखती है। आहाहा! अब यह व्यवहार के पक्षवालों को कठिन पड़े कि हमारे व्यवहार से कुछ नहीं होता? नहीं होता, ऐसा किसने कहा? व्यवहार से होता है बन्ध। राग होता है, बन्ध होता है। आहाहा! व्यवहार आता अवश्य है। व्यवहार नहीं है, ऐसा नहीं है। दो नय हैं, दो नय हैं। दोनों नय का विषय भी है। ज्ञानी को भी दोनों नय का विषय है परन्तु त्रिकाली के आश्रय में जो आनन्द है, वह व्यवहार के आश्रय में दुःख है। आहाहा! गजब काम है।

**मुमुक्षु :** प्रत्यक्ष देखता है या परोक्ष देखता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्रत्यक्ष। प्रश्न बराबर है। यहाँ क्षीण मोह होने पर लिया न? नीचे है, वह अभी परोक्ष है। और यह तो क्षीण मोह होने पर, ऐसा कहा है न? मोह का क्षय होने पर। आहाहा! पंचम काल के जीव को भी यह कहते हैं। मोह क्षीण होता नहीं, ऐसा काल है। आहाहा! तथापि वह बात याद नहीं। आहाहा! मोह क्षीण होकर परसन्मुख की सावधानी बन्द पड़कर, अन्तर की सावधानी पूर्ण उग निकलती है। इसलिए अभ्यन्तर का अन्तर में अंग प्रगट होता है। उगता है अर्थात् प्रगट होता है। है न? अभ्यन्तर अंग प्रगट किया। आहाहा! बहुत थोड़ी भाषा, भाव बहुत भरे हैं। आहाहा!

अपने को छोड़कर पर की जंजाल का पार नहीं होता। अकेला दुःख। नय पक्ष के विकल्प भी दुःख हैं तो व्यापार और धन्धा और स्त्री-पुत्र तो अकेला दुःख, दुःख और दुःख। आहाहा! यह तो अन्तर चीज़ है, उसके नयपक्ष। यहाँ तो नयपक्ष आया है न? नय के पक्ष भी दुःख है। आहाहा! वहाँ शान्ति नहीं है। आहाहा! इससे कहीं दूसरा सरल धर्म नहीं होगा? धर्म सरल कर या देर से पहुँच, यह है।

भगवान परमात्मा साक्षात् विराजते हैं। साक्षात् प्रभु अन्दर विराजते हैं। आत्मा तत्त्व, वह तो परमात्मतत्त्व ही है। तेरी एक समय की पर्याय में गड़बड़ की है। कब तक?— कि पर मेरा, स्त्री मेरी, पुत्र मेरा, हिलना मेरा, देखना मेरा, मेरा कमाता हूँ और ऐसा करता हूँ, यह तो ठीक। यह तो बहुत स्थूल पाप है। परन्तु नयपक्ष की पर्यायें... आहाहा! निश्चयनय का पक्ष करे, अन्दर विकल्प उठे कि मैं ज्ञायक हूँ, मैं शुद्ध हूँ—ऐसे नय का पक्ष भी दुःखरूप है। आहाहा! ऐसा पहुँच न सके, इसलिए फिर व्यवहार का आश्रय लेकर बातें करे, परन्तु इससे, बापू! भव का अन्त नहीं आयेगा? भाई! कुदरत के नियम में यह कुदरत का जो स्वभाव है, उससे विरुद्ध करने जाएगा तो कुछ नहीं रहेगा। कुदरत का स्वभाव तो यह है।

परमात्मा स्वयं है। उसे विकल्प का जाल भी दुःखरूप है। आहाहा! यह तो वस्तु का स्वरूप है। भगवान कहते हैं, इसलिए ऐसा है—ऐसा है? आहाहा! यह तो वस्तु की स्थिति है। स्थिति है—ऐसा भगवान जानकर कहते हैं। आहाहा! भारी बहुत सूक्ष्म बात, बापू! अन्तर में भगवान... कैसे जँचे? पामरता में जहाँ अर्पित हो गया। पामरता में अर्पित हो गया, समर्पण हो गया। उसे परमात्मा में अर्पणता कहाँ से आवे? आहाहा! यह गाथा तो बहुत गहरी है। पद्मप्रभमलधारिदेव बहुत ही गहरे...! आहाहा! साक्षात् चैतन्य को प्रगट करके बातें करते हैं। आहाहा!

निज अभ्यन्तर अंग... वापस भाषा देखी? अभ्यन्तर चीज़। बाहर की चीज़ भगवान के अन्तर में वह नहीं है। निज अभ्यन्तर अंग प्रगट किया है... अन्तर के आनन्द का अंग प्रगट किया है। ऐसा अन्तरात्मा, मोह क्षीण होने पर, किसी (अद्भुत) परमतत्त्व को... आहाहा! अन्तर में देखता है। जहाँ प्रभु पड़ा है, जो अनन्त गुण का दल है, उसे अन्तर में मोह क्षीण होने पर अन्दर में देखता है। आहाहा! १५० हुई।

गाथा-१५१

जो धम्मसुक्कझाणम्हि परिणदो सो वि अंतरंगप्पा ।  
 झाण-विहीणो समणो बहिरप्पा इदि विजानीहि ॥१५१॥  
 यो धर्मशुक्लध्यानयोः परिणतः सोऽप्यन्तरङ्गात्मा ।  
 ध्यान-विहीनः श्रमणो बहिरात्मेति विजानीहि ॥१५१॥

अत्र स्वात्माश्रयनिश्चयधर्मशुक्लध्यानद्वितयमेवोपादेयमित्युक्तम् ।

इह हि साक्षादन्तरात्मा भगवान् क्षीणकषायः । तस्य खलु भगवतः क्षीणकषायस्य षोडशकषायाणामभावात् दर्शनचारित्रमोहनीयकर्मराजन्ये विलयं गते अत एव सहजचिद्विलास-लक्षणमत्यपूर्वमात्मानं शुद्धनिश्चयधर्मशुक्लध्यानद्वयेन नित्यं ध्यायति । आभ्यां ध्यानाभ्यां विहीनो द्रव्यलिङ्गधारी द्रव्यश्रमणो बहिरात्मेति हे शिष्य त्वं जानीहि ।

रे धर्म शुक्ल सुध्यान परिणत अन्तरात्मा जानिये ।  
 अरु ध्यान विरहित श्रमण को बहिरात्मा पहिचानिये ॥१५१॥

अन्वयार्थ : [ यः ] जो [ धर्मशुक्लध्यानयोः ] धर्मध्यान और शुक्लध्यान में [ परिणतः ] परिणत है, [ सः अपि ] वह भी [ अन्तरंगात्मा ] अन्तरात्मा है; [ ध्यान-विहीनः ] ध्यानविहीन [ श्रमणः ] श्रमण [ बहिरात्मा ] बहिरात्मा है, [ इति विजानीहि ] ऐसा जान ।

टीका : यहाँ ( इस गाथा में ), स्वात्माश्रित निश्चय-धर्मध्यान और निश्चय-शुक्लध्यान, यह दो ध्यान ही उपादेय हैं—ऐसा कहा है ।

यहाँ ( इस लोक में ) वास्तव में साक्षात् अन्तरात्मा भगवान् क्षीणकषाय हैं । वास्तव में उन भगवान् क्षीणकषाय को सोलह कषायों का अभाव होने के कारण दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्मरूपी योद्धाओं के दल नष्ट हुए हैं । इसलिए वे

( भगवान क्षीणकषाय ) \*सहजचिद्विलासलक्षण अति-अपूर्व आत्मा को शुद्धनिश्चयधर्मध्यान और शुद्धनिश्चय-शुक्लध्यान इन दो ध्यानों द्वारा नित्य ध्याते हैं। इन दो ध्यानोरहित द्रव्यलिंगधारी द्रव्यश्रमण बहिरात्मा है, ऐसा हे शिष्य! तू जान।

श्लोक - १५१ पर प्रवचन

१५१, १५१ में तो ऐसा कहते हैं कि ध्यान के बिना प्राणी, वह बहिरात्मा है। देखो!

जो धम्मसुक्कझाणम्हि परिणदो सो वि अंतरंगप्पा।

झाण-विहीणो समणो बहिरप्पा इदि विजाणीहि ॥१५१॥

भाषा देखो। आहाहा!

रे धर्म शुक्ल सुध्यान परिणत अन्तरात्मा जानिये।

अरु ध्यान विरहित श्रमण को बहिरात्मा पहिचानिये ॥१५१॥

आहाहा! अन्तर के ध्यानरहित आत्मा को बहिरात्मा जानना। आहाहा! अन्तर के आत्मा के ध्यान में अन्तरात्मा जानना। आहाहा! एक से एक गाथाएँ ऊँची चढ़ती है।

टीका : यहाँ ( इस गाथा में ), स्वात्माश्रित... आत्मा को अवलम्बन कर, आत्मा प्रभु परमात्मा, उसके आश्रय से आश्रित निश्चय-धर्मध्यान... देखो! कोई कहे धर्मध्यान व्यवहार राग को कहा है। परन्तु वह तो उपचार से कथन है। यह निश्चय-धर्मध्यान। व्यवहार धर्मध्यान कहा है न? मोक्ष अधिकार में। चिन्ता-चिन्ता करता है, वह व्यवहार धर्मध्यान है। शुभभाव धर्म है। समयसार, मोक्ष अधिकार में। चिन्ता करता है मोक्ष की, वह व्यवहार धर्मध्यान। व्यवहार अर्थात् राग; राग अर्थात् बन्ध का कारण। आहाहा! भाषा व्यवहार धर्मध्यान की है, हों! वहाँ टीका ऐसी है। आहाहा! परन्तु व्यवहार की भाषा निरर्थक है, ऐसा नहीं जानता। व्यवहार अर्थात् कुछ नहीं। व्यवहार अर्थात् कथनमात्र। आहाहा! है अवश्य, व्यवहार का विषय है परन्तु कथनमात्र है, जानने के लिये है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यहाँ ( इस गाथा में ), स्वात्माश्रित निश्चय-धर्मध्यान और निश्चय-

\* सहजचिद्विलासलक्षण=जिसका लक्षण ( -चिह्न अथवा स्वरूप ) सहज चैतन्य का विलास है ऐसे।

शुक्लध्यान... अभी शुक्लध्यान नहीं है, तथापि उसका स्वरूप बतलाते हैं। आहाहा! कि जिससे उसे धर्मध्यान होने पर भविष्य में शुक्लध्यान होगा ही और केवलज्ञान प्राप्त करेगा। आहाहा! परमात्मा तू होगा। धर्मध्यान में आयेगा तो तू परमात्मा होगा। आहाहा! मुनिराज पंचम काल के जीव को भी निश्चय शुक्लध्यान भी समझाते हैं, देखा! वह अभी नहीं है। आहाहा! स्वात्माश्रित निश्चय-धर्मध्यान और निश्चय-शुक्लध्यान यह दो ध्यान ही उपादेय हैं... दो ध्यान ही आदरणीय है। आहाहा! इसके अतिरिक्त कोई पर्याय या विकल्प, वह उपादेय नहीं है। पर्याय उपादेय नहीं है। पर्याय स्वयं ध्यान करती है, वह उपादेय है। आहाहा!

यहाँ ( इस लोक में ) वास्तव में साक्षात् अन्तरात्मा भगवान क्षीणकषाय हैं। उत्कृष्ट लिया है। आहाहा! ( इस लोक में ) वास्तव में साक्षात् अन्तरात्मा... आहाहा! वह तो भगवान क्षीणकषाय हैं। जिसे कषाय नष्ट हो गयी है। बारहवाँ गुणस्थान वह साक्षात् अन्तरात्मा है। आहाहा! जो अभी नहीं है, उसकी बात करते हैं। नहीं है परन्तु यह करना है, यही करने लाना है। धर्म को समझकर भी यही लाना है। भले थोड़ा काल अन्तर पड़े, वह लाना ही है और वह आना ही है; इसलिए धर्मध्यान के साथ शुक्लध्यान को जोड़ दिया। आहाहा! वह धर्मध्यानवाला गिर जाए और फिर भटके, यह बात यहाँ नहीं है। आहाहा! जिसे अन्तरात्मा आनन्दस्वरूप भगवान का जिसे आनन्द का स्वाद आया, वह अन्तरात्मा निश्चय से धर्मध्यानी है और निश्चय शुक्लध्यानी होगा। आहाहा! होगा ही। आहाहा!

वास्तव में साक्षात् अन्तरात्मा भगवान क्षीणकषाय हैं। वास्तव में उन भगवान क्षीणकषाय को... देखा! उसे भगवान ही कहा। सोलह कषायों का अभाव होने के कारण... उसे तो सोलह कषाय का अभाव है। दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्मरूपी योद्धाओं के दल नष्ट हुए हैं। आहाहा! पंचम काल के मुनि को खबर है कि अभी बारहवाँ गुणस्थान नहीं आता, परन्तु तो भी इसे प्राप्त करके बारहवाँ आयेगा ऐसा बताते हैं। आहाहा! भले काल लगे, परन्तु दूसरे भव में आनेवाला है या तीसरे भव में भले। एक स्वर्ग का भव ( आवे )। स्वर्ग का भव, वह तो बीच में धर्मशाला है। धर्मशाला है। पच्चीस कोस काटना हो तो बीस कोस चलने के बाद बाकी पाँच कोस रहे तो धर्मशाला

हो, वहाँ पड़ाव डालते हैं। फिर सवेरे उठकर वहाँ जाना है। इसी प्रकार यह पंचम काल के साधु देह छूटकर स्वर्ग में जाएँ, परन्तु वह तो धर्मशाला है। वहाँ निकलकर परमात्मा होनेवाले हैं। आहाहा! इतना जोर देते हैं, स्वयं मुनिराज इतना जोर देते हैं। आहाहा!

भगवान क्षीणकषाय को सोलह कषायों का अभाव होने के कारण दर्शन-मोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्मरूपी योद्धाओं के दल नष्ट हुए हैं। आहाहा! दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय, इनके जो दल। बड़े योद्धा। जड़ के योद्धा। जड़ के योद्धा के दल नाश को प्राप्त हुए हैं। आहाहा! और चैतन्य का योद्धा प्रगट हुआ है। इसलिए वे ( भगवान क्षीणकषाय ) सहजचिद्विलासलक्षण... नीचे अर्थ है। सहजचिद्विलासलक्षण=जिसका लक्षण ( -चिह्न अथवा स्वरूप ) सहज चैतन्य का विलास है ऐसे। आहाहा! विलास। विलास रमते हैं न? यह विलास। चैतन्यविलास है, यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! जिसका सहज स्वाभाविक ज्ञान विलास लक्षण अति-अपूर्व आत्मा को... आहाहा! अति-अपूर्व आत्मा को। पूर्व में कभी नहीं किया—जाना था, उसे शुद्धनिश्चयधर्मध्यान और शुद्धनिश्चय-शुक्लध्यान इन दो ध्यानों द्वारा नित्य ध्याते हैं। आहाहा!

इसलिए वे ( भगवान क्षीणकषाय ) सहजचिद्विलासलक्षण अति-अपूर्व आत्मा को... देखा? जिसका लक्षण सहज चैतन्य का विलास है। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप है, उसका विलास—पर्याय में आनन्द का विलास है। आहाहा! ऐसा जो सहजचिद्विलासलक्षण अति-अपूर्व आत्मा को... ऐसी दशा को अनन्त भव में कभी प्राप्त नहीं हुआ, ऐसे अपूर्व आत्मा को शुद्धनिश्चयधर्मध्यान... आहाहा! और शुद्धनिश्चय-शुक्लध्यान इन दो ध्यानों द्वारा नित्य ध्याते हैं। दोनों ( ध्यान ) डाले हैं। आहाहा! दोनों ध्यान को ध्यान कहा। शुक्लध्यान की भी भावना तो है न! भले धर्मध्यान है, शुक्लध्यान नहीं परन्तु उसकी भावना तो है। उसकी भावना कहीं भव के भाव की नहीं है, भव के भाव की नहीं है। भव करूँ, यह भाव नहीं है। आहाहा!

अति-अपूर्व आत्मा को शुद्धनिश्चयधर्मध्यान और शुद्धनिश्चय-शुक्लध्यान इन दो ध्यानों द्वारा नित्य ध्याते हैं। आहाहा! सदा नित्य आत्मा है तो उसका अनुभव करते हुए सदा नित्य आत्मा अनुभवता है। कोई एक समय भी उसका विरह नहीं पड़ता। आहाहा! इन दो ध्यानोंरहित... अब कठिन डाला। जिसे धर्मध्यान नहीं, जिसे आत्मा का

ध्यान नहीं... आहाहा ! वह चाहे जैसा क्रियाकाण्डी हो, वही द्रव्यलिंगधारी द्रव्यश्रमण बहिरात्मा है, ऐसा हे शिष्य ! तू जान । तीन विशेष दिये । धर्मध्यान और शुक्लध्यान स्वात्माश्रित रहित जीव को तो द्रव्यलिंगधारी द्रव्यश्रमण बहिरात्मा है, ऐसा हे शिष्य ! तू जान । हे शिष्य ! तू ऐसा जान । ऐसा विशेष कहते हैं... ( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव ! )